**Indian J.Soc & Pol. 03(03):2016:81-86** **ISSN 2348-0084 (PRINT)**
**(Special Print Issue: September, 2016)** **ISSN 2455-2127(ONLINE)**

# वैदिक चिन्तन परंपरा में संपोषी विकास की अवधारणा

**लाल साहब सिंह**[1]

[1]प्राचार्य, आर आर पीजी कालेज, अमेठी, सुल्तानपुर, उ0प्र0, भारत

**ABSTRACT**

*संपोषी विकास विकास की एक ऐसी वैकल्पिक वैचारिकी है जिसमें प्रकृति–अनुराग है, भविष्य की चिन्ता है और सामाजिक न्याय का सरोकार है। वस्तुतः संपोषी विकास की अवधारणा में स्पष्ट है कि ऐसा विकास जो न केवल आर्थिक समृद्धि का पुनरूत्थान करता है वरन् इसके लाभ का निष्पक्ष और न्यायपूर्ण वितरण भी करता है। यह गरीबों को प्राथमिकता देता है, निर्णय लेने में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करता है। यह विकास प्रकृति, स्त्री एवं बच्चों के अनुकुल है। संपोषी विकास स्वस्थ पर्यावरण व नीतिपूर्ण अर्थ व विज्ञान की माँग करता है। यह भारतीय जीवन पद्धति में आध्यात्मिकता और भौतिकता का अनोखा संयोग है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'यो वैभूमातत्सुखम, नाल्पे सुखमस्ति' की दृष्टि है। यह दृष्टि स्वस्थ पर्यावरण व समाज का द्योतक है। वैदिक चिन्तन परम्परा में व्यक्त की गयी मान्यताएँ जिस नवीन जीवन–दृष्टि को प्रोद्भाषित करती हैं वह संपोषी विकास के लिए जीवनदायी आधार है। फ्रिटजॉफ काप्रा, बिल देवाल, जार्ज सेसन्स, वार्वीक फाक्स, अर्नेनीस, रजनी कोठारी, ओ0पी0 द्विवेदी, रवि रविन्द्रा, वन्दना शिवा आदि विद्वानों ने संपोष्य विकास के भारतीय दृष्टि की सराहना की है और डीप इकोलॉजी की शब्दावली गढ़कर वैदिक चिन्तन परम्परा का समर्थन भी किया है। इस आधार पर हम इस शोधपत्र में वैदिक और उत्तर वैदिक चिन्तन परम्परा में संपोष्य विकास की चिन्तनधारा को प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।*

***KEY WORDS:** संपोषी विकास, वेद काल, उत्तर वैदिक काल,*

भारतीय ऋषि वैज्ञानिकों ने जनता को पहला पाठ यही सिखाया कि सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक जड़–चेतन वस्तु में आत्मिक साहचर्य है। अतः यहाँ कभी प्रकृति के उपादानों को मनुष्य से भिन्न नहीं देखा गया। प्रकृति के अंगों में देवत्व दर्शन की यहाँ सनातन परम्परा रही है, जिसका अपना ठोस दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आधार रहा है। इसलिए यह माना गया कि यदि मानव जाति (जीव–जगत) की संरक्षा करनी हैं तो हमें प्रकृति की रक्षा करनी होगी– 'रक्षेये प्रकृतिं पातुं लोकाः'। भारतीय चिन्तन परम्परा में जन्मदात्री के प्रति जो भाव प्रदर्शित किया गया है वह पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए मील का पत्थर साबित हो सकता है। उक्त मंत्र में ऋषि इतने करूणामय हो गये हैं मानो पृथ्वी का नहीं अपनी जन्मदात्री माँ का ही गर्भकाट रहे हों। जड़ और चेतन का यह कैसा अभिन्न संयोग है, दोनो सत्ताएँ तद्रूप हो उठती हैं। एकात्मकता और एकरूपता का ही यह परिणाम था कि पुरातन समय में प्रकृति और पर्यावरण सुरक्षित थे। आज भौतिकवादी विचारधारा ने मानवीय अंतस्थल को इतना संवेदन शून्य बना दिया है कि उसे स्वार्थपरता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझता। जड़ का दोहन और जीवन का शोषण यह दो ऐसी अतिवादी गतिविधियां है जिसने मानवीय संवेदना की अंतेष्टि कर दी। व्यक्ति के इस चिन्तन को बदलना होगा और शून्य हो रही संवेदना को पुनः जागृत करना होगा।[8] यजुर्वेद (13/18) में यह स्पष्ट है कि पृथ्वी को पुष्ट करें, उर्वरता बढ़ाएं परन्तु पृथ्वी को हिंसित न करें अर्थात् पृथ्वी को प्रदूषित न करें 'पृथ्वी माँ हिंसीः'।(यजु0 13/18)। उन्होने द्युलोक एवं पृथ्वी से प्रार्थन की है कि आप दोनों अन्य देवों के साथ मेरी रक्षा करें, साथ ही पोषक तत्वों से पोषित करें – 'पितृतां नो भरीमभिः' (ऋग्वेद 1/22/13) पर्यावरणीय दृष्टि से ऐसा तभी संभव है, जब हम पृथ्वी की सुरक्षा करें उसे प्रदूषित न करें। माता पिता के समान मानकर उसकी सेवा करें, नमन करें तथा किसी भी रूप में हानि न पहुँचाएं।[9]

सभी वेदों में मानव व प्रकृति के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना गया है। अथर्ववेद में इसमें माँ–बेटों का सम्बन्ध बताया गया है। इस सम्बन्ध में प्रकृति के प्रति श्रद्धा का भाव जागृति होता है जिसमें प्रकृति भोग की वस्तु न होकर जीवनदायिनी सिद्ध होती है। वैदिक धारणा यह है कि प्रकृति व मनुष्य दोनों के संपोषण के लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड को ही सुरक्षित रखा जाय। इसके लिए 'परिधि' को आधार माना गया है। परिधि, जिसे' छन्दस' भी कहते हैं भौतिक तत्वों को घेरे हुए होती है। ये भौतिक तत्व हैं आपः (जल) वाताः (वायु) औषधिः (वृक्ष) आदि। ये ऐसे तत्व हैं जो हमारे जीवन को सरंक्षण व शक्ति (ऊर्जा) प्रदान करते हैं। वेदों में परिधि शब्द

*1.Corresponding Author*

सुरक्षा के अर्थ में आया है। स्वयं प्रकृति जीव की परिधि है। इस परिधि में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौः, जल, अग्नि आदि देव, दिशाएँ, पर्वत, मेघ, वृक्ष, औषधि वनस्पति, पशु आदि समाहित हैं। इन सभी रक्षक परिधि रूप पदार्थों में परमसत्ता का प्रमुख स्थान है जिससे सभी जीवों की सुरक्षा होती है। परिधि के बने रहने से जीव का अस्तित्व बना रहता है। परिधि के बने रहने का अर्थ है पारिस्थितिकी व पर्यावरण का संतुलन होना, जिससे पर्यावरण शुद्ध रहता है और जीव प्रदूषण का शिकार नहीं होता। इससे संपोष्य विकास में सहायता मिलती है। अथर्ववेद का मंत्र इस तथ्य की पुष्टि करता है– *''सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरूषः पशुः।यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्।। (अथर्ववेद 8.2.25)*

अथर्ववेद में जल, वायु और औषधियों को छन्दस (आच्छादक) बताया गया है। पृथ्वी भी ब्रह्म में परिधि है, जो सभी जीव–जन्तुओं, पदार्थों की आच्छादक है, परकोटा है– *उर्वीरासन परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत।तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः।। (अथर्ववेद 13.1.46)*

अर्थात पृथ्वी जगत की पर्यावरण रूपी परिधि है, जिसमें सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश आता है, एवं यज्ञ आदि सम्पन्न होते हैं। यह पृथ्वी परिधि रूप होती हुई जीव जगत का संरक्षण कैसे करती है इस वेद मंत्र में स्पष्ट है– *यास्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामत्रं कृष्टयः संबभूवः।यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।। (अथर्ववेद 12.1.03)*

सृष्टि के संपोषी विकास के लिए जितनी आवश्यकता परिधि (बाह्य) की होती है, उतनी ही अन्तर्धि (आन्तरिक बल) की भी। यदि इनमें से किसी एक पक्ष की अनुपस्थिति हुई तो विकास संपोषी नहीं होगा। वैदिक वाङ्गमय में इसका प्रमाण है कि अन्तर्धि किसी भी तथ्य को ऊर्जा व गति प्रदान करता है और परिधि उस तत्व के जीवन को संरक्षण। स्पष्ट है कि असंतुलन सम्पूर्ण जीवन को भयावह वातावरण में परिवर्तित कर सकता है। अतः परिधि (भौतिक वातावरण) को प्रदूषणविहिन करना आवश्यक है। यजुर्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि अपने वायुमण्डल और अंतरिक्ष को असंतुलित न करों।

संपोष्य विकास की दृष्टि से ऋषि वैज्ञानिकों ने पृथ्वी (धरती, मिट्टी आदि), वृक्ष (जंगल, वनस्पति आदि) जल (नदी, सागर आदि) और वायु को पर्यावरण के चार आवश्यक तत्व माना है और इस बात पर बल दिया है कि इन तत्वों के उचित प्रबन्धन से ही पारिस्थितिकी सुरक्षित की जा सकती है और पारिस्थितिकी सापेक्ष विकास की कल्पना की जा सकती है। वैदिक दृष्टि से इन तत्वों के संरक्षण संर्वधन एवं प्रबन्धन हेतु इन पर्यावरणीय संघटकों की विवेचना क्रमशः इस प्रकार है–

वैदिक संस्कृति के अनुसार पृथ्वी केवल मिट्टी और पत्थर का जड़ पिण्ड मात्र नहीं है। उसमें भी संवेदनाएं हैं। यह वास्तव में दिव्य अंतःकरण से प्रस्फुटित वह संवेदना है, जिसमें जड़ में भी साक्षात जीवन की अनुभूति होती है। अथर्ववेद के भूमि सूक्त में पृथ्वी को 'माँ' की संज्ञा दी गयी है। यह संवेदना की पराकाष्ठा है। भूमि सूक्ति के इस मंत्र के रचनकार को पृथ्वी, पहाड़, पर्वतों, नदी, भौगोलिक पिण्ड जैसी नहीं दिखती, उसमें उसको अपनी 'माँ' जैसी अनुभूति होती है। उसकी आत्मा से एकाकार हो जाता है और वह कहता है– *यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यंयास्त उर्जस्तन्वः संबभूवु।तसु नो धेह्याभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।। (अथर्ववेद 12.1.12)*

भारतीय चिन्तन परम्परा में जन्मदात्री के प्रति जो भाव प्रदर्शित किया गया है वह पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए मील का पत्थर साबित हो सकता है। आज भौतिकवादी विचारधारा ने मानवीय अंतस्थल को इतना संवेदन शून्य बना दिया है कि उसे स्वार्थपरता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझता। जड़ का दोहन और जीवन का शोषण यह दो ऐसी अतिवादी गतिविधियां है जिसने मानवीय संवेदना की अंतेष्टि कर दी। व्यक्ति के इस चिन्तन को बदलना होगा और शून्य हो रही संवेदना को पुनः जागृत करना होगा। यजुर्वेद (13/18) में यह स्पष्ट है कि पृथ्वी को पुष्ट करें, उर्वरता बढ़ाएं परन्तु पृथ्वी को हिंसित न करें अर्थात् पृथ्वी को प्रदूषित न करें 'पृथ्वी माँ हिंसीः'।(यजु0 13/18)। उन्होने द्युलोक एवं पृथ्वी से प्रार्थन की है कि आप दोनों अन्य देवों के साथ मेरी रक्षा करें, साथ ही पोषक तत्वों से पोषित करें – 'पितृतां नो भरीमभिः' (ऋग्वेद 1/22/13) पर्यावरणीय दृष्टि से ऐसा तभी संभव है, जब हम पृथ्वी की सुरक्षा करें उसे प्रदूषित न करें। माता पिता के समान मानकर उसकी सेवा करें, नमन करें तथा किसी भी रूप में हानि न पहुँचाएं।

आज विशेषज्ञों का मानना है कि पर्यावरण संतुलन एवं जीवन रूपी रथ चक्र को सही ढंग से गतिमान रखने के लिए समूचे भू–भाग के 33 प्रतिशत क्षेत्र में वृक्ष वनस्पतियों का होना अनिवार्य है। परन्तु अब कुल 6 लाख 40 हजार 107 वर्ग किलोमीटर ही वन रह गये हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए और विकास की संपोषी दिशा तय करने के लिए धरती को वृक्षों से आच्छादित होना आवश्यक है। इसलिए ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्ष लगाओं और इनकी सुरक्षा करो क्योंकि ये जल के स्रोतों की रक्षा करते हैं। (ऋग्वेद 3.8.11) चूँकि वृक्ष प्रदूषण को दूर करने का कार्य करते हैं इसलिए उन्हें काटो न।

वृक्ष एवं वनस्पतियाँ औषधियुक्त हैं जो मानवीय जीवन को सुरक्षा प्रदान करती हैं। अथर्ववेद में कई ऐसे वृक्षों और औषधियों का वर्णन है जो प्रदूषण नष्ट करते हैं। ये वृक्ष वनस्पतियां हैं– अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर (गूलर) आंजन (अंजन), नलद (खसखस), भद्र और चीपुद्रु (देवदार और चीड़), मदुध (मुलहटी), जंगिड़ (अर्जुन), अपामार्ग (चिरिटा, लटजीरा), प्लक्ष (पाकर), सोम (सोमलता), लाक्षा (लाख), खदिर (खैर), पलाश (ढाक) आदि।

पेड़–पौधों के बिना जीवन सम्भव नहीं है। पेड़–पौधें जीवित प्राणी को प्राण देते हैं। ये क्लोरोफिल की उपस्थिति में जीवित प्राणी को आक्सीजन प्रदान करते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है– 'औषधियाँ एवं वृक्ष हमारे लिए सुखकारी हों। (ऋग्वेद 7.35.5)।पर्यावरण की रक्षा के लिए वनस्पति एवं वृक्षारोपण को आवश्यक मानते हुए एक मंत्र द्वारा वन में वनस्पति आरोपण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है– ' वनस्पति वन आस्थापयध्यवम्'' (ऋग्वेद 10.101.11) अथर्ववेद के एक मंत्र में यह विवेचित है कि पंच औषधि प्रदूषण को दूर करने में सक्षम हैं। ऋषियों का मानना है कि सोम, दर्भ, यव, भंग एवं सह ये ऐसे वृक्ष एवं वनस्पतियाँ है जिनमें प्रदूषण नष्ट करने की विशेष शक्ति है–*पच राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।दर्भो भंगो यवः सहस्ते नो मु×चन्त्वंहसः।।(अथर्ववेद 11.6.15)*

मानवीय जीवन के लिए जल की वैशिष्टता सनातन है। जल ही जीवन है, जल ही विकास का आधार है और जल हमारे पर्यावरण का अविभाज्य अंग है। इसीलिए टिकाऊ विकास के लिए भारतीय चिन्तन परम्परा में शुद्ध एवं औषधियुक्त जल की कामना की गयी है। वैदिक ऋषि जल की शुद्धता पर विशेष बल देते हैं। क्योंकि शुद्ध जल में रोग विनाशक तत्व होते हैं। यह दीर्घ जीवन का सिद्ध सूत्र है।

वैदिक वाङ्मय यह बताते हैं कि 'जल' ही सृष्टि का मूल कारण है। ऋग्वेद के ऋचा (10.129.1) में कहा गया कि जब न सत् था न असत्; जब न पृथ्वी थी और न आकाश। उस समय जल विद्यमान था। वृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया कि अव्यक्त का पूर्व रूप जल ही था और जल से ही सत्य का सृजन हुआ है– आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यम् सृजत (39.5.1)। जल चेतना का कारण है क्योंकि जल में अमृत एवं औषधि तत्व विद्यमान हैं। ऋग्वेद में भी वर्णन है कि शुद्ध जलों में अमृत औषधि का निवास है।

वैदिक चिन्तन परम्परा में यह उल्लिखित है कि यदि शुद्ध जल का उपयोग किया जाय तो वह मंगलप्रदाता तथा घृत के समान पुष्टिवर्धक होता हैं। जल में आयुर्वेदीय गुण है। जल भोजन पचाने में अत्यन्त उपयोगी है। जल से प्राणशक्ति विवर्धित होती है। वह कान्ति बल और पौरूष का आधार है। वह मानव जीवन को दीर्घजीवी बनाता है–*आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्रीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः।तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।(अथर्ववेद 3.13.5)*

वेद यह भी कहते हैं कि जल में सब प्रकार की औषधियां हैं उसमें अग्नि भी है, जो कल्याणकारी है–*अप्सु में सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।अग्नि च विश्वशम्भुवम्।। (ऋग्वेद 10.9.6)*

इसीलिए अथर्ववेद में मानवीय सभ्यता का बने रहने के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होने की कामना की गयी है।

अथर्ववेद में ऋषि ने यह प्रार्थना की है कि शुद्ध जल ही हमारे शरीर के लिए बहे अशुद्ध नहीं। यदि हम नदियों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक कचरों और गन्दे नालों को प्रवाहित करते रहेंगे तो हमें शुद्ध जल की प्राप्ति संभव नहीं होगी। यजुर्वेद से स्पष्ट रूप से नाना प्रकार की अशुद्धियों को प्रवाहित करने का निषेध किया गया है। इसी तरह मनुस्मृति में सरिताओं, तालाबों, पोखरों में मल–मूत्र विसर्जन करने की मनाही की गयी है। यहाँ तक कहा गया है कि इनमें थूक अथवा दूषित पदार्थ; रक्त, या विष अर्थात् रासायनिक कूड़ा कचरा व सड़ा चमड़ा, मरा हुआ पशु या अन्य किसी तरह के वर्ज्य पदार्थ का विसर्जन न करें।

*नाप्सु मूत्रं पुरीषं–वा ष्टोवन समुत्सृजेत।अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।।(मनुस्मृति 4–56)।*सभी व्यक्ति को स्वस्थ जल की प्राप्ति हो, इसलिए वैदिक ऋषि मनीषियों ने यह कामना की कि हमारे समस्त मरूस्थल का जल सुख दायक हो, जलीय क्षेत्रों का जल सुखदायी हो, पृथ्वी खोदकर निकाले हुए कुएँ आदि का जल सुखदायी हो– घड़ा में रखा हुआ जल सुखदायी हो और वर्षा से प्राप्त जल सुखदायी हो–*शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः।शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ, आभृताः शिवाः न सन्तु वार्षिकीः।।(अथर्ववेद 1.6.4)।*

यदि वैदिक ऋषि–चिन्तको की सोच को विकास की कड़ी से जोड़ा गया होता तो गंगा नदी का जल इतना दूषित न होता और आज, जल की पेय हेतु अनुपलब्धता न होती। वैदिक ऋषियों ने जल और उसके स्रोतो को दैवीय स्वरूप प्रदान करके उसकी सुरक्षा को महत्वपूर्ण माना था लेकिन हमने विकास की अन्धी दौड़ में उसकी परवाह नहीं की।

कहते हैं संस्कृतिक का विकास नदियों के किनारे हुआ है। नदियों के किनारे ही आध्यात्मिक चेतना विकसित होती है। यही चेतना प्राकृतिक उपादानों को संरक्षित करने का कार्य करती है। नदियों को देवतुल्य मानकर सृष्टि के विकास का

आदि कारण माना गया है। ऋग्वेद में नदी सूक्त (10.75.5) की व्याख्या मिलती है जिसमें नदी के प्रति आस्था एवं आदर का भाव प्रदर्शित किया गया है। यह भाव प्रदर्शित किया गया है कि यह नदी हमारे जीवन को सदैव सिंचित करती रहे। अर्थात् सदैव स्वच्छ एवं स्वस्थ जल प्राणियों को प्राप्त होता रहे। ऋग्वेद में यह स्पष्ट आदेश है कि जो जल बह रहा है। उसे हवि दो क्योंकि जल में अमृत है। जल में औषधितत्व है। जल में सारे रोगों का इलाज है। जल, पाप अर्थात् प्रदूषण को बहा देता है। जल तेजस्वी बनाता है और यह जल ही है जो मनुष्य को दीर्घजीवी बनाता है। अथर्ववेद में लिख गया है कि जल समस्त दुःखों, रोगों को नष्ट करने वाला है, यह सर्वोत्तम वैद्यरूप तत्व है। ऋग्वेद की ऋचा में कहा गया कि जल अत्यन्त कल्याणकारक है; जैसे माता पुत्र का कल्याण चाहती है वैसे जल भी कल्याण करते हैं जल अमृत रूप है, जीवनी शक्ति है, सब औषधियों का रस है।

वृक्ष एवं जल की तरह वायु पर्यावरण का अनमोल व आवश्यक तत्व है जिसके बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वायुमण्डल का फैलाव स्थल और जल मण्डल के ऊपर करीब 200 मील तक है। वायुमण्डल में विभिन्न मात्राओं में आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बनडाई आक्साइड जैसी गैसें विद्यमान रहती हैं। जिससे पारिस्थितिक तन्त्र सुचारू रूप से चलता है। वायुमण्डल ही जीवित प्राणियों एवं वनस्पतियों यहाँ तक जल आदि की पराबैगनी किरणों से रक्षा करता है और उल्काओं को जलाकर नष्ट कर देता है।

प्राणी और पौधों का जीवन एक दूसरे पर निर्भर है। प्राणी के दीर्घ जीवन के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है और उससे निष्काषित कार्बनडाई आक्साइड से पौधे क्लोरोफिल की उपस्थिति में अपना भोजन बनाते हैं। इससे पारिस्थितिक चक्र अबाधरूप से गतिमान रहता है। परन्तु इसमें व्यक्तिक्रम तब आता है जब औद्योगिकरण और नगरीकरण के चक्कर में आम आदमी के विकास का मापदण्ड बदल जाता है। उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते मानव ने प्रकृति का चीरहरण कर डाला। धरती के हृदय को चीरकर बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया, विकास के नाम पर जंगल काटे और प्रदूषण उगलने वाली बड़ी–बड़ी फैक्टरियों का निर्माण किया जिससे वायुमण्डल पूरी तरह से प्रदूषण की चपेट में आ गया। हमने धरती, मानव व अन्य प्राकृतिक अवयवों की बाजी लगाकर विकास तो कर लिया, परन्तु जब आस्तिक संकट में पड़ा तो चिल्लाकर यह कहने लगे कि प्रदूषण की इस कहर से कैसे बचा जाय? इस दिशा में जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि वैदिक संस्कृतिक की उन पुरातन मान्यताओं को अपना जीवनादर्श बनाना होगा जिसमें विकास का अर्थ वस्तुओं का विकास नहीं वरन् स्वस्थ पर्यावरण का विकास करना है। स्वस्थ पर्यावरण का विकास तब होग जब त्याग के साथ भोग, 'तेन त्यक्तेन भुजीथा' का सूत्र हमारे जीवन का लक्ष्य होगा। जल, वायु, पशु, पक्षी, मानव के सांस्कृतिक परिवेश आदि की शुद्धता व उपलब्धता के प्रति हम सचेष्ट रहें और नवीन नैतिक चेतना का विकास करें तभी पर्यावरण–सापेक्ष विकास कर सकते हैं। यह तभी संभव है जब हम प्राचीन वैदिक संस्कृति की मान्यताओं को पुनः अपने जीवन विकास के सूत्र के साथ जोड़ें।

आज संसार में वायुमण्डल पर सर्वाधिक कुप्रभाव वायु प्रदूषण का है। वायु मण्डल में कार्बन डाई आक्साइड क्लोरो–फ्लोरो कार्बन नाइट्रस आक्साईड, मीथेन जैसे गैसों के अधिक्य से कई समस्याएँ उद्भूत हुई हैं, जैसे– धरती की रक्षा कवच (ओजोन परत) का नष्ट होना, ग्लोबल वार्मिंग, मौसम परिवर्तन, वनस्पति व जीवन जगत पर प्रतिकूल प्रभाव, अम्लीय वर्षा इत्यादि। वायुमण्डल में बढ़ते वायु प्रदूषण से तमाम बीमारियाँ पैदा हो रही हैं– जैसे, सांस की बीमारी, आँखों में जलन, खुजली, हृदय रोग, मोतियाबिन्द इत्यादि। इन संकटों से छुटकारा हमे तकनीकि विकास से संभव नहीं है। हाँ, यदि हम जीने की जीवन दृष्टि बदले तो शायद संकटों से उबर सकेंगे। यह जीवन दृष्टि पुरातन भारतीय मान्यताओं को जीवनादर्श बनाकर प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए हमें इको–इथिक्स जैसी मूल्यवादी धारणा का अनुगमन करते हुए वैदिक संस्कृति की मूल्यपरक मान्यताओं की ओर लौटना होगा।

वेदों में वर्णित है कि वायु जीवित प्राणी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। यह जड़ चेतन जगत का स्रोत है। यह पृथ्वी जल आदि की अपेक्षा सूक्ष्म होने से अति शक्तिशाली है। इसके द्वारा सभी रक्षित एवं प्रतिष्ठित हैं। शुद्ध वायु रोगादि दोषों को दूर करने वाला होता है–*आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे।। ऋग्वेद– 10/137/2–3, अथर्ववेद– 4.13–3*

ऋग्वेद के इस मंत्र में वायु को विश्व भेषज कहा गया है और यह प्रार्थना की गयी है कि वह दूषित वायु को दूर करे तथा शुद्ध वायु– भेषजवात को प्रवाहित करें। वैदिक युग के ऋषि वैज्ञानिक इस रहस्य से परिचित थे कि शुद्ध वायु हृदय के लिए शान्तिदायक और सुखकारी होती है और आयु को बढ़ाती भी है। इसीलिए एक अन्य मंत्र में ऋषि यह प्रार्थना करते हैं कि ऐसी वायु प्रवाहित हो जो हमारे जीवन को दीर्घजीवी बनावे–*वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।प्रण आयूषि तारिषत्।। ऋग्वेद (10.189.1)*

प्रश्न उठता है कि विकास के इस अन्धी दौड़ में वायु को शुद्ध कैसे रखा जाय? क्या शुद्ध वायु के लिए फैक्टरियों को

बन्द कर दिया जाय। जो लोगों के रोजी–रोटी के साधन हैं या फिर कुछ और वैदिक मान्यता यह है कि वायु के शुद्धीकरण का एक मात्र उपाय अत्यधिक मात्रा में वृक्षारोपण किया जाय और अग्निहोत्र अर्थात् यज्ञ जैसे महत्वपूर्ण कर्मकाण्ड को दैनिक दिनचर्या में शामिल किया जाय। अग्निहोत्र अथवा यज्ञ से वायु प्रदूषण कैसे दूर हो सकता है। इसका विश्लेषण और वैज्ञानिक विवेचन आवश्यक है–

पृथ्वी पर प्रदूषण दूर करने में 'यज्ञ' का विशेष महत्व है। भारतीय परम्परा में 'यज्ञ' सम्पूर्ण सृष्टि का केन्द्र है। यह समस्त संसार को क्रियान्वित करता है। जीवों में स्वच्छ वायु प्रवाहित कर उन्हें दीर्घायु बनाता है। वातावरण को मधुर व स्वास्थ्यवर्धक बनाता है। मानसिक असन्तुलन दूर करता है।

यज्ञ का प्रमुख देवता अग्नि है। जब अग्नि में विभिन्न शोधक पदार्थों की आहुति देकर उसे प्रज्वलित किया जाता है तो उससे जल, भूमि, वृक्ष अन्नादि सभी संपुष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। इससे वायुमण्डल में आर्द्रता और भार में वृद्धि होगी। समय से वर्षा होने से वनों का पालन होगा व अन्नों में वृद्धि होगी और सूखा, तूफान, आंधी आदि उपद्रव शांत होंगे। इस वाक्यांश का अर्थ यह हुआ कि सृष्टि में वास करने वाले सभी जीव व वनस्पतियाँ अपने चारों तरफ के वायुमण्डल से प्रभावित होते हैं यदि वायुमण्डल में शुद्ध वायु प्रवाहमान हो तो वायुमण्डल संपोषी होगा तथा जीवन सुस्थिर, प्रभावशाली, प्रदूषणरोधी व स्थायी होगा। वेदों में वायुमण्डल शुद्धीकरण व संपोषी वातावरण तैयार करने के अनेकों विचार भण्डार हैं। यजुर्वेद में यह विचार मिलता है कि 'सुख' एवं जीवन देने वाली वायु सर्वत्र बहे। इस विचार को वर्तमान परिस्थिति से साम्य कराने पर ही व्यक्ति संपोषी जीवन की ओर उन्मुख होगा। यदि सुखदायी, जीवनदायी वायु का वातावरण में अभाव हो जाए अथवा जीवन घाती तत्वों की पर्यावरण में वृद्धि हो जाए तो जीवन की संपोष्यता नहीं रह सकती। इसके लिए उनमें वातावरण शुद्धीकरण का अवबोध आवश्यक है। निश्चय ही यह अवबोध ज्ञान से ही संभव है और वैदिक परम्परा में ज्ञान का आधार 'यज्ञ' है। अर्थात 'यज्ञ' ही ज्ञान की उत्पत्ति करता है। यज्ञ से संपूर्ण परिवार अर्थात संसार का प्रत्येक प्राणी सौ वर्षो तक लम्बी आयु तक जीवित रहता है। ऋग्वेद में 'यज्ञ' को प्राचीनतम धर्म माना गया है। यज्ञ को धर्म मानकर प्रत्येक व्यक्ति को उसे आत्मसात करने पर बल दिया गया है। यज्ञ करना कोई रूढ़िवादिता नहीं, भविष्य के प्रति संचेतना है। जैसे–जैसे परम्परात्मक कर्मकाण्डों को दैनिक जीवन से दूर किया जा रहा है, व्यक्ति का पर्यावरण विचार, व भाव सभी प्रदूषित हो रहा है। परम्परात्मक कर्मकाण्डों में यज्ञ के माध्यम से सुखकारी वायुमण्डल का निर्माण होता है। यज्ञ कर्म की यह विधा समस्त पर्यावरण के लिए कल्याणकारी है। वैदिक वैज्ञानिकों व विद्वानों का मानना है कि यज्ञ कर्म से उत्पन्न विभिन्न गैसें जैसे– एथिलीन आक्साइड, एसीटिलीन, प्रोपलीन आक्साइड आदि वातावरण में फैले विभिन्न प्रकार की प्रदूषित गैसों को उदासीन कर देते हैं और शुद्ध वातावरण के निर्माण में सहयोग प्रदान करते हैं। सामान्यतया वैदिक मंत्र के इस उद्धरण ''शुद्ध वायु प्राणशक्ति लाती है और रोगों को दूर करती है, को मान्यता देते हुए सृष्टि में व्याप्त प्रदूषण को दूर करने के लिए याज्ञिक कर्म के महत्व को स्वीकार किया गया है।

वैज्ञानिक बताते हैं कि यज्ञ में डाली गयी आहूति अग्नि में पड़कर सूक्ष्मतम रूप से पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष, वायु, वनस्पति, औषधि सबको ही शुद्ध कर देती हैं। इसी कारण ऋषि वैज्ञानिकों ने यज्ञ जैसे कर्मकाण्ड को मानव जीवन का अंग बना दिया। यज्ञ में जो आहुति डाली जाती है उसमें सुगन्धित और मिष्ठ प्रदार्थ जैसे कस्तूरी, केसर, गुड़ शक्कर इत्यादि और पुष्टिकारी तथा रोगनाशक पदार्थ जैसे– घृत, दुग्ध, फल, अपामार्ग, सोमलता, गूगल, औषधीय वृक्षों के जड़, छाल, फूल आदि का विशेष महत्व है। ऋषि कहते हैं कि अग्निहोत्र के उपादानों में घृत तत्व सर्वाधिक प्रदूषण विनाशक (विष नाशक) है। घी को संस्कृति में 'सर्पि' कहते हैं इसी कारण ऋषि यह कामना करते रहे कि द्युलोक और पृथ्वी लोक घी से परिपूर्ण हो–घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्। (यजु0 5.28, ऋग्वेद– 6.70.4) याज्ञिक कर्म के द्वारा दूषित वायु शुद्ध होती है और आक्सीजन के चक्रमण प्रणाली में संतुलन उत्पन्न होता है।

अमरीका से प्रकाशित पत्रिका नेशनल हार्टीकल्चर सोसाइटी के सम्पादक डॉ0 एन0 मेक्केलिप्स के अनुसार तेजाबी वर्षा से बचने का एक मात्र उपाय याज्ञिक कर्म है। यज्ञ में घृत और अन्य आहुति तत्वों से जब अग्नि का संयोग बनता है तो वायुमण्डल में उपस्थित विभिन्न प्रकार के जीवन रोधी गैसों में सुधार होता है और पूरा वातावरण माधुर्यमय हो जाता है। भारत में पर्यावरण संरक्षण संघ, नासिक, के अध्यक्ष प्रो0 एस0सी0 मूले ने 'मेडिसिना एल्टरनेरिया' द्वारा आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अग्निहोत्र के प्रदर्शन द्वारा बतलाया कि प्रदूषण के कारण सूर्य तथ पृथ्वी के मध्य का वातावरण बिगड़ गया है जिसका समाधान अग्निहोत्र द्वारा ही किया जा सकता है। वेदों में यह मिलता है कि अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है जिससे वृष्टि होती है। जैसी आहुति सूर्य को प्राप्त होगी उससे वैसे ही बादल बनेंगे और वैसी ही वृष्टि होगी। यज्ञ की हवि से भावित शुद्ध वायु से बादल भी शुद्ध बनेंगे तथा उनसे वर्षा भी शुद्ध होगी। उस वर्षा से जीवनदायिनी कृषि–वनस्पतियाँ आदि भी शुद्ध होंगी–'शन्यः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धव शमु शन्त्वापः। (ऋग्वेद– 7.36.8)

वेदाचार्य डॉ0 रघुवीर वेदालंकार ने अपने एक लेख–'पर्यावरण की समस्या तथा इसका वेदोक्त समाधान' में लिखा है कि वायु प्रदूषण का समाधान एकमात्र याज्ञिक क्रिया है जो वेदों में वर्णित है। उनके अनुसार यज्ञ में जो हवि आहुति की जाती है उसमें सबसे महत्वपूर्ण गोघृत है। गोघृत में वह शक्ति है जिससे जल–वायु में मिले विष का तत्काल विनाश हो जाता है। जब गोघृत को चावल के साथ मिश्रित करके यज्ञ में आहुति डाली जाती है तो इससे एसिटलीन नामक तत्व उत्पन्न होता है जो कि प्रदूषित वायु को अपनी तरफ खींचकर शुद्ध कर देता है। यज्ञाग्नि में आहुति डालने से वायुमण्डल में मार्जन, शोधन और भेदन क्रिया उत्पन्न होती है। यज्ञाग्नि में प्रयुक्त द्रव्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर उत्तरोत्तर ऊपर की ओर गति करता है। इस प्रकार घर्षण से वायु प्रदूषक तत्वों का विनाश होने लगता है। वेदों में भी इसी तरह की ऋचा मिलती है–'शन्नः वातः पवताम्' (यजु0 36.10)।

भारतीय वैज्ञानिक डॉ0 सत्य प्रकाश ने अपनी पुस्तक अग्निहोत्रा में की जाने वाली सामग्री का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि उसमें ऐसे तत्व हैं जिनसे फारमेल्डहीहाइड गैस उत्पन्न होती है। यह गैस बिना परिवर्तित हुए वायुमण्डल में फैल जाती है। स्पष्ट है कि फारमेल्डीहाइड गैस एक शक्तिशाली कीटनाशक गैस है। पानी के वाष्प के साथ मिलकर यह गैस वायु प्रदूषक तत्वों को नष्ट करती है। इसी कारण यज्ञ कुण्ड के चारों ओर मेखलाओं में पानी भरा जाता है।

आज वायु प्रदूषण के चलते वायुमण्डल में कार्बन डाईआक्सइड, सी0एफ0सी0 सदृश अनेकों गैसों के कारण धरती के कवच 'ओजोन परत' में दरार पैदा हो गयी है जो मानव जाति के लिए हितकर नहीं है। वैदिक ऋचाओं में ऋषि वैज्ञानिकों ने यह चेतावनी दी थी कि महत् उल्ब (वेदों में ओजोन परत के संदर्भ में आया शब्द) जो पृथ्वी की रक्षा करती है, यदि इनको हानि पहुँचाया गया तो यह उस प्रकार विनाशकारी होगा जैसे गर्भस्थ बालक की झिल्ली से छेड़–छाड़ करना। वैदिक ग्रन्थों में ऐसे परत की संरक्षा के लिए उसके दोषों, विकारों को दूर करने के लिए पहले से ही उपाय बताया गया है। कहा गया है कि इस दृश्य जगत से 32 किलोमीटर ऊपर महत्उल्ब है; उसकी रक्षा हवि से, यज्ञ कर्म से करनी चाहिए–*आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन।तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्विरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (अर्थव.वेद 4.2.8)*

यज्ञ मानव जाति के प्राणशक्ति के रक्षा का द्योतक है। यज्ञ से ही प्रगति संभव है। यज्ञ से ही मनुष्य पापों (प्रदूषणों) से बचकर कल्याणकारी (संपोषी) कार्य की ओर प्रवृत्त होता है। याज्ञिक प्रवृत्ति से व्यक्ति हिंसात्मक कार्य नहीं करता। सुख और सुरक्षा सहस्त्रों प्रकार की पुष्टि वाक्शक्ति व आत्मबल बुद्धि व ज्ञान और प्रदूषण रहित स्थान अथवा वातावरण प्राप्त होता है।

यदि मानवीय जीवन को बदलते परिवेश में सुरक्षित, व्यवस्थित और सुस्थिर रखना है अर्थात् जीवन को दीर्घजीवी बनाना है तो हमें वैदिक व उत्तर वैदिक चिन्तन परम्पराओं में बताये गये जीवन सूत्रों को अंगीकृत और आत्मार्पित करना होगा। मानव समाज में पारिस्थितिक तंत्र को सुस्थिर रखने के लिए पर्यावरणीय सुरक्षा का बोध पैदा करना होगा और सृष्टि के पस्पर निर्भरता के सिद्धान्त को जीवन्त बनाना होगा। विभिन्न पाश्चात्य चिन्तकों ने भौतिकवादी– उपभोक्तावादी जीवनदर्शन को त्यागकर अब वैदिक दर्शन की 'त्याग की संस्कृति' को अपनाने पर बल दिया है। अर्नेनीस, हेडेगर, कैरोलिन मर्चेन्ट एवं इग्लिच आदि चिन्तकों ने वैदिक दर्शन में बताये गये जीवनादर्श को अपनाने पर बल दिया है। इनका स्पष्ट मत है कि संपोषी जीवन दृष्टि की वैदिक मान्यताएं मनुष्य में परस्परता, अन्योन्याश्रितता और अंतःसलिलता का सृजन कर संपोष्य विकास की वैदिक दिशा तय करने में सक्षम है। अतः जीवमण्डल के विज्ञानशील मानव को इस दिशा में चलने पर कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

**संदर्भ**


यजुर्वेद

ऋग्वेद

त्रिपाठी, विद्याशंकर, (2004): *संस्कृत वांग्डमय में पर्यावरण चेतना*– ज्ञानपुर भदोही, विश्वभारती अनुसंधान परिषद,

मिश्र, एम0एन0 वेदों में पर्यावरण, *नेशनल टुडे न्यूज*, सतना (समाचार पत्र) पृ0 4, दिनांक 16.10.1992

टिकेकर, इन्दु(1995) *पानी और पेड़ों में जीवन* , सर्वसेवा संघ प्रकाशन वाराणसी,

भविष्यपुराण, मध्यपर्व प्रथम भाग, अध्याय 10 व 11 उद्घृत, कल्याण संक्षिप्त भविष्य पुराणांक 1992 पृ0 206.

प0 वीरसेन *वेद विज्ञानाचार्य, यज्ञ महाविज्ञान,*

सामवेद

अखण्ड ज्योति, जनवरी, 1998.

अथर्ववेद,